भारत की सामासिक संस्कृति और हिंदी में अनूदित कोंकणी साहित्य

डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र

सगळे धर्म, सगळे वंश घेतले तुवें होटीं
अमृताये परस गोडी तुज्या दुदा-घोटीं
देवय पसुन लुब्ध जावन आयलो तुज्या पोटीं
धन्य अशें स्तन्य तुजें संजीवन - म्हुर्ते

पूर्व तुजें दिव्य, दिव्य त्यायपरस फुडार
तो सचित्र गे आमच्या रथ दोळयांमुखार
तो घडौक सतत आमी जांव जिवार उदार
दी अशें अनंत धैर्य सदय वरदवंते

(बाकीबाब बोरकार)

अर्थात् हे हिंद देवते ! तूने संपूर्ण धर्म और वंश को अपने आँचल में संजोया है। तेरे दूध में अमृत-सी मिठास है। संजीवनी बूटी की तरह तुम्हारा स्तन धन्य है। यही कारण है कि ईश्वर ने स्वयं लुब्ध होकर यहाँ जन्म लिया। तुम्हारा पौराणिक इतिहास तो दिव्य है ही उससे अधिक दिव्य है भविष्य। हमारे समक्ष रथ पर सजी हुई तुम्हारे भविष्य की सुंदर एवं सचित्र झाँकियाँ विद्यमान हैं। हमें ऐसा अनंत धैर्य का वरदान दीजिए ताकि हम अपने प्राणों की आहुति देकर भविष्य के यथार्थ को साकार कर सकें।

अनुवाद हमारी सामासिक संस्कृति की भावना को प्रबल और पुष्ट करता है। इससे विचारों के बंद कपाट खुलते हैं और हमारे चिंतन-मनन के भूगोल को गहन एवं व्यापक

आयाम मिलता है। साथ ही साहित्य को एक नई दृष्टि भी मिलती है। देश में भावनात्मक एकता हेतु हमें अनुवाद कार्य को राष्ट्रीय सेवा की भावना से ग्रहण करना चाहिए। इसके लिए भाषा का समुचित ज्ञान आवश्यक है। जल और भाषा की प्रकृति एक है। फर्क सिर्फ इतना है कि जल के स्रोत प्रकृति के भीतर हैं और भाषा के स्रोत आदमी के। 'समिटि समिटि जल भरहिं तलाबा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा' की भांति भाषा आदमी में एकत्र होती है बशर्ते वह साहित्य एवं परिवेश का गहन और व्यापक अध्ययन-मनन करे और तब जाकर अनुवाद कार्य में संलग्न हो। भाषा लौकिक-पारलौकिक सारे ज्ञानों की मूल श्रृंखला है जोकि विभिन्न भाषाओं में परिव्याप्त है। इसे अनुवाद कार्य के द्वारा ही सुलभ बनाकर सामासिक-संस्कृति की भावना को प्रगाढ़ बनाया जा सकता है। भाषा, साहित्य और संस्कृति का गहरा संबंध होता है। भाषा संस्कृति की संवाहिका का कार्य करती है।

आज मीडिया विस्फोट, सूचना प्रौद्योगिकी एवं भूमंडलीकरण के कारण वैश्विक सामासिक-संस्कृति का उदय हो रहा है। विविध संस्कृतियों के मिलन के संदर्भ में गुरूदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी एक कविता में कहा था-

हेथाय आर्य हेथाय अनार्थ
हेथाय द्रविड़ चीन
शक हूण दल पठान मुगल
एक देहे होलो लीन।

अर्थात् यहाँ आर्य, अनार्य, द्रविड़, चीन, शक, हूण, पठान और मुगल सभी आए लेकिन सब इस देश में विलीन हो गए। भारत की सामासिक-संस्कृति का निर्माण देश के विविध प्रांतों की विभिन्न संस्कृतियों के आपस में घुल-मिल जाने से हुआ है। भारतीय संविधान में इसे Composite Culture से रूपांतरित किया गया। डॉ. राममनोहर लोहिया का मंतव्य है कि 'लगभग दो हजार सालों में हिंदुस्तान में दो उपसंस्कृतियाँ साथ-साथ चलती रही हैं। ये हैं सामंती, उपसामंती और लोक उपसंस्कृति। पहली उपसंस्कृति के पोषक संस्कृत, अरबी, फारसी और अंग्रेज़ी का प्रयोग एक-एक कर या साथ-साथ करते रहे हैं जबकि लोक उपसंस्कृति में जनसंचार की भाषाएँ पालि, प्राकृत, अवधी, हिंदी आदि रही हैं। देशी और विदेशी संस्कृतियों के बीच टकराव की बात कभी पैदा ही नहीं हुई।'

एक सर्वभारतीय संस्कृति है जो क्षेत्रीय और सामाजिक-राजनीतिक विभाजनों के बावजूद सारे देशवासियों को एक सूत्र में बांधती है। लोग दिल्ली, आंध्र और उत्कल की संस्कृति की बात कर सकते हैं मगर मूलत: एक ही संस्कृति है जो सारे भारत में व्याप्त है। दरअसल हमारी सामासिक संस्कृति गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न' और 'जनु जीवहि माया

लपटानी' की भाँति अविछिन्न है। गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर के 'गोरा' उपन्यास में गोरा के विचारों में सामासिक संस्कृति का प्रौढ़तम स्वरूप विद्यमान है- 'तुम्हीं माँ हो, तुम यहाँ घर पर बैठी थीं और तुम्हारे लिए मैंने कहाँ-कहाँ की खाक नहीं छानी ! तुम्हारी कोई जाति नहीं, तुम अपने बच्चों में कोई अंतर नहीं करतीं, हिंदू मुसलमान या ईसाई तुम सब पर कृपालु हो ! भारत तुम्हीं हो।'

गोवा की ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परंपरा कई मायनों में विशिष्ट रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से यहाँ मौर्यवंश, गुप्त, भोज, शीलहारा, सातवाहन, चालुक्य, कदंब आदि राजवंशों ने शासन किया। 1510 से 18 दिसंबर 1961 तक यहाँ पुर्तगालियों का शासन होने के कारण साहित्य और संस्कृति को काफी ठेस पहुँची। उस समय पोर्तगीज भाषा का वही स्थान था जो कि मुगलकाल एवं ब्रिटिशकाल में क्रमश: फारसी और अंग्रेज़ी का था। पुर्तगाली शासन के दौरान कोंकणी भाषा को साहित्यिक स्तर पर फलने-फूलने का अवसर कम मिला। फिर भी संपर्क भाषा के रूप में इसकी जड़ें गहरी थीं। मराठी यहाँ साहित्य और संस्कृति की भाषा थी। जनभाषा के रूप में कोंकणी का विस्तार कर्नाटक, केरल और महाराष्ट्र के कुछ भूभागों तक था और आज भी है। पुर्तगाली शासन के समय ईसाइयों में कोंकणी रोमन और हिंदुओं में देवनागरी लिपि में प्रचलित थी तथा केरल और कर्नाटक में क्रमश: मलयालम एवं कन्नड़ बावजूद इतनी विभिन्नता के बाद भी साहित्य, संस्कृति, इतिहास और कोंकण प्रदेश के नवजागरण में कोंकणी का विराट योगदान है।

आधुनिक कोंकणी का जनक शणै गोंय बाब (वामन रघुनाथ वर्दे वालावलकर) को माना जाता है जिनके व्याकरण, कथा, इतिहास और नाटकों की वैचारिक पुस्तकों के माध्यम से देवनागरी लिपि में कोंकणी का प्रचार हुआ। उनका मत था कि कोंकणी मराठी की बोली नहीं अपितु एक स्वतंत्र एवं संपन्न भाषा है। वस्तुत: गोवावासियों में हिंदी को लेकर मुक्ति के पूर्व न कोई दुराव था और न आज भी है लेकिन मराठी के प्रति संघर्ष आज भी जारी है। शणै गोंय बाब की विचारधारा को आगे बढ़ाने में बा.भ. बोरकार, लक्ष्मणराव सरदेसाय, रवींद्र केलेकर, मनोहराय सरदेसाय, वामन सरदेसाय, शंकर भंडारी आदि साहित्यकारों का विशिष्ट योगदान है।

शील, व्यवहार, क्षमाशीलता, सत्यनिष्ठा, धीरज, दया, प्रेम आदि मानवीय मूल्यों और गुणों से ही सामासिक-संस्कृति की भावना परिपुष्ट होती है। इन मूल्यों के प्रति आस्थावान गोवा का समाज वर्तमान सांप्रदायिक तनाव एवं आतंकवाद के माहौल में सामासिक-संस्कृति का एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है।

सत्य, दया, प्रेम, पवित्रताय

क्षमा..... हांचे व्हड शिकवणेंचे..
अमृत, अमर संजीवन .....
उठ्यले, कोटी कोटी
मडयांतले, मनीस निष्प्राण.....
दळिद्रांतल्लान.....
नर्कांतल्यान.....

(र. वि. पंडित)

अर्थात् हमारा देश ऐसा है कि यहाँ सत्य, दया, प्रेम, पवित्रता, क्षमा आदि शिक्षा के उच्च विचार संजीवनी बूटी सदृश अमृत के समान हैं। नारकीय एवं विपन्न हालत में जी रहे करोड़ों निष्प्राण लोगों को इसके द्वारा जीवनदान मिला है। कोंकणी कविताओं एवं अन्य विधाओं में भारत की महिमा और उसकी सांस्कृतिक चेतना का स्वर प्रखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। गोवा मुक्ति के दौरान गोवा की अस्मिता को संपूर्ण देश से जोड़कर देखा गया।

सह्य हिमालय, विंध्य थिरुमल
वागेरि पंच सिद्ध
गंगा, ब्रह्मा, मांडवि, कृष्णा, पंचतीर्थ, कावेरी
सयेंत शिव हें विश्व उसवलां
नक्षत्रांचें गांव
नांव तुजें व्हड जांव

(वामन सरदेसाय)

मुक्ति के बाद कोंकणी भाषा को 1975 एवं 1987 में क्रमश: राष्ट्रीय साहित्य अकादमी और राजभाषा की मान्यता मिली। संविधान की आठवीं अनुसूची में इसे 1992 में शामिल किया गया। कोंकणी भाषा साहित्य, शिक्षा और संस्कृति संवर्धन हेतु 1962 में कोंकणी भाषा मंडल की स्थापना हुई। अभी तक कोंकणी साहित्य का हिंदी में अनुवाद बहुत कम हुआ है। इस दिशा में प्रथम प्रयास श्रीपाद जोशी और प्रभाकर सोनवलकर ने र. वि. पंडित की एक सौ दस कोंकणी कविताओं का हिंदी में अनुवाद 'जैसा आया वैसा गया' शीर्षक से किया। इसका प्रकाशन ख्यातनाम हिंदी प्रचारक एवं स्वतंत्रता सेनानी श्री माधव पंडित ने गोमंतक राष्ट्रभाषा सभा मडंगाव से कराकर स्वयं इसकी भूमिका भी लिखी। इसमें ऐतिहासिक, पौराणिक, प्रेम-प्रकृति, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समसामयिक समस्याओं, एवं रोजमर्रा जीवन-शैली आदि पर आधारित अनूदित रचनाएँ संकलित हैं। 'मैं तो एक मामूली आदमी हूँ' कविता वर्तमान संदर्भों में सामासिक-संस्कृति का जीवंत रूप प्रस्तुत करती है।

मेरा रंग, मेरा देश, मेरी जाति,
मेरा धर्म, मेरी भाषा,
मैं कौन, कहाँ का, कैसा हूँ
इन सबका विचार किए बिना
प्रेम से, केवल प्रेम की खातिर
मानव जाति के उद्धार के लिए
मानवता के धर्म से
'सारा विश्व मेरा घर' मानने वाले
मानव उद्धार दिया गया प्रेम का आधार
मुझे चाहिए।

1992 में हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर के संपादन में 'भारतीय शिखर कथा कोश' नामक पुस्तक में कोंकणी कहानियों का अनूदित रूप प्रकाशित हुआ। इसमें 'एक कोंकणी लेखक की मृत्यु' (अना म्हांबरो), 'लूट का पैसा' (अभयकुमार वेंलीगकर), 'उत्कंठा' (ओलीव्हीन गोमिश), 'प्रसाद का फूल' (उदय भेंब्रे), 'रुद्र' (गजानन जोग) , 'अकेलेपन की सांझ' (गोकुलदास प्रभु), 'वह मकान' (गुरूदास कामत बांबोलकर), 'अकेला' (चंद्रकांत केणी), 'जीत' (जयंती नायक) 'केतकी' (जयमाला दणाइन), तीन तारीख' (तानाजी हलर्णकर), 'टूरिस्ट' (तुकाराम शेट), 'एक ज्ञानी एक अज्ञानी' (के.दत्ता नायक), 'कौन चोर कौन साव' (दत्ताराम), 'पाता वह जो न चाहे.... (दामोदर मावजो) 'गलसरी' (एन.शिवदास) 'बूचड़ के घर एक रात' (पंडुलीक ना. नायक), 'नारायण का मुला' (फेलीस्यु कार्दोज), 'इकल्ला' (वसंत भगवंत सावंत) 'धधकती छाया' (महाबलेश्वर सैल), 'तड़पन' (मीना काकोडकर), 'जोर जुल्म के टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है !' (शशांक सीताराम) 'सर्विस' (शांता कंटक, 'मैगी' (शीला नायक), ऐ उम्र-बाबली उम्र (सुरेश काकोडकर), 'रोपाई' (सुरेश पिलर्णकर), 'बाग में फिर बहार' (हेमा पुंडलीक नायक) आदि कहानियाँ संकलित है।

इन कहानियों का हिंदी अनुवाद मोहनदास सो. सुर्लकर, नारायण शेजवलकर, पी.जी. कामत, चंद्रलेखा डिसूजा, शांति कामत आदि ने किया है। ये कहानियाँ सामासिक-संस्कृति की दृष्टि से भारतीय जीवन शैली के विविध रूपों को व्यक्त करती हैं। 'लूट का पैसा' कहानी में 'जैसी करनी वैसी भरनी' प्रसिद्ध उक्ति को चरितार्थ किया गया है। इसमें पिता द्वारा गलत ढंग से अर्जित धन का अपव्यय उसके पुत्रों द्वारा किया जाता है। ऐसे ढेरों उदाहरण भारतीय सामाजिक जीवन में मौजूद है। आचरण की शुद्धता हमारी संस्कृति का

मूल मंत्र है किंतु मूल्यों के क्षरण के दौर में इनका महत्व कम होता जा रहा है। भारतीय समाज में उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक पुत्र-प्राप्ति की कामना, मान-मनौती, पूजा-पाठ, यज्ञ-अनुष्ठान आदि का प्रचलन सदियों से रहा है और आज कंप्यूटर के युग में भी विद्यमान है। उदय भेंब्रे की कहानी 'प्रसाद का फूल' में उक्त विचारों की सजीव अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत कहानी में आपूशेणै पुत्र प्राप्ति की कामना से मंदिर की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेता है- 'मंदिर में समाराधना का भोज दिया जाता, तब परोसैया का काम आपूशेणै बड़े उत्साह से किया करते। दीपावली में तेल-बाती का काम हो या पालकी के जुलूस में पताकाएँ लेकर या सजाकर तैयार रखने का काम हो, हर सोमवार की रात को पालकी कंधे पर उठानी हो, तो आपू शेणै 'हरहर महादेव' के नारे लगाते।' अंतत: आपूशेणै को भक्ति भावना का फल प्राप्त होता है। घर के मुंडेर पर कौवे द्वारा काँव-काँव बोलना यानी मेहमान आने की सूचना की बात मैंने बचपन में सुनी ही नहीं थी अपितु कौवे उड़ाए भी थे। गजानन जोग की कहानी 'रुद्र' को पढ़ने से मालूम हुआ कि इसका प्रचलन गोवा में भी है। पत्रकार, संपादक, कहानीकार चंद्रकांत केणी की 'अकेला' और 'रुक्मीण' कहानी मूलत: युवा प्रेम, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और गोवा प्रेम पर आधारित है। 'अकेला' कहानी में बाणावली गाँव का निवासी इनास एक षड्यंत्र के चलते ब्राजील की जेल में कैदी का जीवन बिताता है। इस कहानी में हिंदू-क्रिश्चियन की प्रगाढ़ मित्रता एवं मातृभूमि गोवा के प्रति अगाध प्रेम को दर्शाया गया है। लेखक ने इनास के गोवा प्रेम को इस रूप में व्यक्त किया है- 'हफ्ते के बाद जेल से मेरे नाम एक पार्सल आया था। खोलकर देखा तो उसमें इनास द्वारा बनाई नक्काशीवाली हैंडस्टिक थी। जेल के वर्कशॉप में उसने वह बनाई थी। उस स्टिक पर नारियल का पेड़, ईसा मसीह, मछली और मंदिर के सामनेवाले दीपस्तंभ का दृश्य खींचा हुआ था। वह चीज देखकर मेरा मन भर आया। यह काम करने के लिए उसे कितना समय लगा होगा ? किस भावना से भरकर उसने यह काम किया होगा ?

पुंडलीक नायक की कहानी 'बूचड़ के घर एक रात' जहाँ हमारे संस्कारों को झकझोर कर रख देती है वहीं 'प्यारी की बेटी' अविवाहित गर्भवती होने की व्यथा को व्यक्त करती है। नायकजी मूलत: नाटककार के रूप में कोंकणी साहित्य में अपनी अलग पहचान बना चुके हैं। आपका नाटक पंज यानी दड़बा (अनु. दीप्ति वरनेकर) वर्तमान बाल-श्रम की समस्या एवं उसके समाधान को दर्शाता है। इसका प्रसारण 22 दिसंबर, 1988 को महानिदेशालय आकाशवाणी नई दिल्ली द्वारा नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अंतर्गत किया गया था। प्रस्तुत नाटक में एक चोर द्वारा चुराए गए बच्चों के विषय में गाँव का मुखिया गाँव वालों से कहता है- 'इस चोर ने क्या किया है? इसने एक आश्रम खोला है उन चुराए हुए बच्चों

के लिए जहाँ वे हँस सकें, खेल सकें, अपना बचपन लौटा सकें।'

कोंकणी कथाकारों में दामोदर मावजो एक चर्चित कथाकार हैं। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत आपके 'कार्मेलीन' (अनु. नारायण शेजवलकर) उपन्यास को काफी ख्याति मिली। प्रस्तुत उपन्यास एवं 'पाता वह जो न चाहे' कहानी में लेखक ने ईसाई जीवन की संस्कृति के विविध आयामों की चर्चा की है। इन्होंने मुख्यत: कुवैत और दुबई में कार्य कर रही विवाहित महिलाओं के प्रेम-प्रसंगों को मुक्त एवं मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। लेखक ने ईसाई संस्कृति के प्रति अपने लगाव के संदर्भ में स्वयं लिखा है- 'जिस इलाके में मैं रहता हूँ, जहाँ मेरा बचपन गुजरा है, जहाँ मैं पला तथा खेला-कूदा वहाँ का माहौल ही ईसाइयों का है। मेरे जिगरी दोस्त, मुझ पर संस्कार करने वाले शिक्षक तथा आसपास के सारे लोग ईसाई थे। और सौभाग्य से मेरे घरवालों ने भी मुझे कभी यह महसूस नहीं होने दिया कि हम लोग उनसे अलग हैं। फलस्वरूप ईसाई माहौल का हिस्सा बनकर ही मैं बड़ा हो गया, आज भी ईसाइयों के घर आना-जाना, उठना-बैठना, खाना-पीना, शादी की रस्में या अंतिम संस्कार में शामिल होना मेरे जीवन का भाग है।' इस प्रकार कार्मेलीन की संपूर्ण कहानी कुवैत और गोवा के बीच मुस्लिम और ईसाई संस्कृति के बयान से समाप्त हो जाती है।

फेलीस्यु कार्दोज ने 'नारायण का मुला' कहानी में गोवा के किसान की समस्या को चित्रित किया है जिसमें नारायण लगान चुकाने के लिए मजबूरी में अपने मूला नामक बैल को कसाई के हाथों बेचता है। 'शिखर कथा कोश' की लगभग सभी कहानियों में गोवा की ज़िंदगी की धड़कन मौजूद है। तुकाराम रामा शेट की 'टूरिस्ट' कहानी में गाँव के पर्यटन स्थल में परिवर्तित होने तथा ग्रामीण संस्कृति को विनष्ट होते हुए दिखाया गया है। '..नहीं ! नहीं.. मिलेंगी.....। तुम लोगों ने यहाँ आकर गाँव को रंडियों का गाँव बना दिया है। गाँव को बरबाद कर दिया है। यहाँ वेश्याएँ नहीं, घरवाली रहती हैं। चले जाओ यहाँ से !' वह चीखा। उस दुष्ट टूरिस्ट लड़के ने नरम होकर कहा, "बारह न सही, हम सभी के लिए एक भी चल सकती है ! हम तुम्हें पैसा देंगे। कोई घरवाली भी मिले, तो भी चलेगा !" जयंती नायक की 'जीत' कहानी जहाँ गाँव के मुखिया के अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ गरीब कुष्टा के जंग की गाथा है तो हेमा पुंडलीक नायक की अंतिम कहानी 'बाग में फिर बहार' की नवयुवती विधवा कंचन सामाज द्वारा चारित्रिक दोषारोपण से तंग आकर अपने पति के मित्र रजनीश से शादी कर लेती है।

'शिखर कथा कोश' की अन्य कहानियाँ भी किसी न किसी रूप में सामासिक-संस्कृति के विविध रूपों को व्यक्त करती हैं।

हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय द्वारा संपादित एवं 1999 में प्रकाशित 'कोंकणी काव्य

3583 HRD/03—8

चेतना' पुस्तक में बाकी बाब बोरकर, र.वि. पंडित, मनोहरराय सरदेसाय, जे.बी. मोरायस, प्रकाश पाडगांवकर, चा. फ्रा. डि कोश्ता नागेश करमली, ओलीव्हीन गोमिश, पुंडलीक नायक, रमेश वेळुस्कर, माधव बोरकर, तानाजी हळर्णकार, नंदकुमार कामत, दिलीप बोरकर और शैलेंद्र मेहता की चुनी हुई कोंकणी कविताओं के हिंदी रूप संकलित हैं। प्रस्तुत पुस्तक की संकल्पना स्व. प्रो. अरविंद कुमार पांडेय की थी। अनुवाद एवं संपादन का कार्य रोहिताश्व, बी.डी. मिश्र, सत्यदेव त्रिपाठी, रवींद्रनाथ मिश्र, इशरत खान, वृषाली मांद्रेकर ने किया। चंद्रलेखा डिसूजा, नागेश करमली, रमेश वेळुस्कर एवं अन्य कोंकणी कवियों का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।

गोवा मुक्ति के बाद की प्रसन्नता और नूतन भविष्य की मंगलकामना मनोहरराय सरदेसाय 'आज आया हमारा राज' कविता में करते हैं।

मांडवी में कर स्नान, त्याग कर असार-अज्ञान
अर्जित करें पुरखों का ज्ञान, नवजीवन अपनाएँ आज
हिंदू-क्रिश्चियन भाई-भाई, अपनाकर सम्यक् भाव
नया भविष्य अब बनाएंगे, यही कामना जगी है आज

मानवीय चिंता जहाँ नागेश करमली की कविताओं का प्रमुख स्वर है वहीं पर प्रकाश पाडगांवकर की कविता 'अश्वत्थामा' आधुनिकता के गर्भ से उपजी मनुष्य की यातना, एकाकीपन, अभाव, संत्रास, घुटन और अमानुषता को व्यक्त करती है।

मैं मनुष्य
मैं अश्वत्थामा
मां-बाप, भाई-बहन, सगे संबंधी
सभी के रहते हुए भी
मैं अकेला।

रमेश वेळुस्कर की कविताओं में गोवा की माटी में देश-प्रेम की खुशबू विद्यमान है। ये मूलतः प्रेम और नैसर्गिक सुषमा के कवि है। इनकी प्रारंभिक कविताएँ रोमानी भावों से सजी है।

सावन में धूप खिली
बिखेर दिया रंग
नाच रही वर्षा
प्रकृति हो गयी दंग।

किसलय-किसलय पर
मोती उग आए
छूप ने छींट दिए, किरणों के इंद्रधनुष।

'कोंकणी काव्य चेतना' के अन्य कवियों की रचनाओं में भी गोवा और भारत की संस्कृति का समन्वयात्मक रूप वर्णित हुआ है।

कोंकणी साहित्य की विभिन्न विधाओं के अनुवाद समय-समय पर 'भाषा', समकालीन भारतीय साहित्य' (नई दिल्ली), 'गोमांचल' (गोवा) एवं अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। समकालीन भारतीय साहित्य के मई-जून 1998 के 77वें अंक में 'कोंकणी कविता-कहानी : एक चयन' शीर्षक के अंतर्गत 'अक्षर', 'अंकुर', 'मेरे ग्रामवासी', (आर. एस. भास्कर), 'यह राह है ऐसी' (जेम्स फेर्नांदिश), 'मोमबत्ती', 'नारियल' (सुदेश शरद लोटलीकर), 'एक दिन क्या हुआ' (अरुण साखर दांडे), 'हाथ' (आनंद वर्टी), 'रीति-रिवाज़ों का किला तोड़कर' (लक्ष्मणराव सरदेसाय), 'मेज आई' (मनोहरराय सरदेसाय) आदि कविताएँ और 'बहन का उपहार' (शांतारामहेदे), 'दैवककड़ी' (मीना काकोडकर), 'आखिरी जंग' (जयंती नायक), 'भगवान, मंदिर और लहू' (एडविन जे. एफ. डिसोजा) 'अकेलेपन की शाम' (गोकुलदास प्रभु), 'पिछड़ा गांव' (महाबलेश्वर सैल), 'तुलसी विवाह' (प्रकाश थली), 'आँख का आपरेशन' (लक्ष्मणराव सरदेसाय), 'हमारे गाँव में बी.डी.ओ. आ रहे हैं' (मनोहरराम सरदेसाय) 'खान मालिक, मजदूर और उनकी यूनियन' (अ.ना. म्हांब्रो) आदि कहानियों के हिंदी अनुवाद प्रकाशित हैं। उक्त चयन का अनुवाद सुनीता यादव, मनोहरराय सरदेसाय, किरण बुडकुले, जयंती बोरकार, शकुंतला पै, ममता शेट, प्रमोद वी. शेणवी, वासुदेव शानभाद, प्रभा भट्ट, श्री निवास शेण्वि, पद्माकर एस. फायदे और स्नेहलता शरेशचंद्र ने किया है।

भारतीय भाषाओं के साहित्य में कथ्य एवं शिल्प को लेकर हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों के संदर्भ में कोंकणी साहित्य में भी बदलाव आए लेकिन आंदोलन एवं चर्चा का स्वरूप धारण नहीं कर सके। प्रस्तुत चयन की कविताएँ एवं कहानियाँ मानवीय मूल्यों, गोवा के परिवेशगत जीवन एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं।

मेरे गाँव में/एक दरिया है/गरज कर
कूदने वाली लहरें/लेकिन/मेरे गाँव वाले/
शांत स्वभाव के हैं/लहरों की तरह/
क्रोधी नहीं।

(आर.एस.भास्कर)

'समकालीन कोंकणी कविता: एक चयन' की 'मेज आई' कविता पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप परिवर्तित भारतीय जीवन शैली को चित्रित करती हैं।

मेज आई / मेज पर बैठ कर / कप आया /
प्लेट आई / काँटा आया / चमचा आया /
मेज आई / मेज के साथ / कुर्सी आई / कुर्सी आई /
पाट गया / आसन गया / चोटी गई / पंगत गई /
पगड़ी गई / शाल गया / गमछा गया /.....

'कोंकणी कविता-कहानी: एक चयन' की भाँति 'कोंकणी साहित्य : एक झलक' समकालीन भारतीय साहित्य के अंक 96 : जुलाई-अगस्त 2001 में कोंकणी कविता 'हे सूरज' - शरतचंद्र शेणै (अनु.एल.सुनीता बाय), 'आयुष्य' - सोमनाथ द. कोमरपंत (अनु. रवींद्र कात्यायन), 'आज का अधोलोक' - सु.म. तड़कोड (अनु. रवींद्रनाथ मिश्र), 'मांडवी' एवं 'तीन क्षणिकाएँ' - मनोहरराय सरदेसाय (अनु. रोहिताश्व)' पुराने खत' एवं 'यादें - माधव बोरकार (अनु. अनिल श्रीवास्तव) कहानी 'खंडित दर्पण'-लेखक एवं. अनु. मनोहरराय सरदेसाय, 'प्रत्याशा' - के. गोकुलदास प्रभु (अनु. पी.जी. कामत), निबंध 'मैं कुंवारा ही क्यों रहा !' - शंकर भांडारी (अनु. रवींद्रनाथ मिश्र एवं मनोहरराय सरदेसाय), आलेख 'रमेश वेळुस्कर का काव्य संसार' (रोहिताश्व) आदि प्रकाशित हुए। प्रस्तुत अंश में शंकर भांडारी के व्यंग्य निबंध 'मैं कुंवारा ही क्यों रहा !' में दूसरे विश्व युद्ध के आस-पास लेखक ने गोवा में अपने रहन-सहन के विषय में लिखा है - 'मेरे घर में पूर्वजों की दुकान थी। उसके बाहर खेत एवं नारियल के पेड़ों का बगीचा था। कितने भी मेहमान आएँ, उनको चावल का मांड खिलाने में दिक्कत नहीं थी। दूसरे विश्वयुद्ध के समय में मैंने बिना माप के चीनी खाई और मिट्टी का तेल जलाया है। उस समय इस प्रकार का भाग्य केवल पोर्तुगीज़ अधिकारियों को ही हासिल होता था। कहने का मतलब यह है कि गोवा में किसी भी अपनी जाति की जवान हुई लड़की के बाप की नज़र मुझ जैसे मैट्रिक पास हुए लड़के पर पड़ती तो इसमें आश्चर्य क्या ?' प्रस्तुत कहानी तत्कालीन वैवाहिक संस्कृति को व्यक्त करती है।

गोवा के नवोदित कथाकारों में प्रकाश पर्येकार की कोंकणी कहानियाँ इन दिनों काफी चर्चित हुई है। इनकी 'सुप्त ममता' (अनु. रवींद्र कात्यायन) और 'महाबली' (अनु. रवींद्रनाथ मिश्र) कोंकणी कहानियाँ क्रमश: समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर-दिसंबर 2000 और 'भाषा', नवंबर-दिसंबर 2002 (नई दिल्ली) की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। 'महाबली' कहानी में होली उत्सव के अवसर पर गाँव के मुखिया के आतंक एवं पर्यावरण की समस्या

को बड़ी सजीवता से व्यक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त भाषा पत्रिका के जनवरी-फरवरी 1998 अंक में मीना काकोडकर की एक कोंकणी कहानी 'चंदन का वृक्ष' (अनु. मनुजा जोशी) भी प्रकाशित हुई है। गोमंतक राष्ट्रभाषा विद्यापीठ, मडगाँव द्वारा प्रकाशित स्थानीय पत्रिका 'गोमांचल' में समय-समय पर कोंकणी साहित्य के हिंदी अनूदित रूप प्रकाशित हुए हैं। 'मेरी डायरी के कुछ पन्ने' - रघुनाथ विष्णु पंडित (अनु-पी.जी. कामत, मार्च-86), 'मेरी डायरी' - र.वि. पंडित (अनु. पी. जी. कामत, नवंबर - 87, मार्च - 88 एवं नवंबर - 88), चंद्रकांत केणी की कोंकणी कहानी 'आम्रपाली' और 'रुक्मीण', (अनुवादक क्रमशः दीपा मुरकुंडे और रजनी सुवण्णा, जनवरी-89 एवं अगस्त 90), 'माँ की ममता' (एकांकी) - दत्ताराम बाबोळकर (अनु. मीनाक्षी ढवळकर-मार्च-91), 'ब्यूटीफुल लेडी' (कहानी) - एन. शिवदास (अनु. चंद्रलेखा डिसूजा-मार्च 92), 'अकाल मृत्यु-महाबलेश्वर-शैल (अनु. मोहन दास सुर्लकर, अक्तूबर-दिसंबर-95), 'धब्बे'-अशोक भोंसले, (अनु. विनायक नार्वेकर 1996) आदि उदाहरणस्वरूप हैं। विगत कुछ वर्षों के अंतर्गत गोवा विश्वविद्यालय ने डा. तानाजी हळर्णकर के संपादन में कोंकणी विश्वकोश का निर्माण कर प्रकाशित किया है जिसमें भारत की समग्र संस्कृति परिलक्षित होती है।

जैसा कि मैंने पहले ही संकेत किया है कि कोंकणी साहित्य का समुचित विकास 1961 में गोवा मुक्ति के बाद ही हुआ। अभी कोंकणी साहित्य शैशव काल से तरुणाई की ओर अग्रसर है। हिंदी की विशाल साहित्य-संपदा से कोंकणी भाषा को लाभ उठाना चाहिए। यह कार्य अनुवाद के द्वारा ही संभव हो सकता है। इससे भारत की सामासिक-संस्कृति की एकता को भी बल मिलेगा। गोवा के हिंदी-भाषियों को चाहिए कि वे कोंकणी सीखकर अनुवाद कार्य में अहम भूमिका निभाएँ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हमें भारतीय संस्कृति की सामासिकता एवं समन्वयवादिता को भूमंडलीकरण एवं विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मायाजाल से बचाना होगा। इसके लिए उत्कृष्ट साहित्य का निर्माण कर अनुवाद के द्वारा उदात्त विचारों को विभिन्न भाषा-भाषियों तक पहुँचाना होगा। इसके अतिरिक्त हमें स्वयं भी अपनी भाषा-संस्कृति एवं जीवन-मूल्यों को व्यापक फलक प्रदान करना चाहिए ताकि उनमें आई हुई विकृति और मलिनता को मांजकर नई दृष्टि प्राप्त की जा सके। इक्कीसवीं सदी के पल-पल बदलते परिदृश्य में विभिन्न भारतीय भाषाओं मे रचे जा रहे साहित्य को अनुवाद के माध्यम से एक मंच पर लाकर ही हम सामासिक-संस्कृति की भावना को परिपुष्ट कर सकते हैं।